Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 13, Issue No. 1, April-2017, ISSN 2230-7540

गाँधी जी का बुनियादी शैक्षिक दर्शन

Dr. Anju Srivastava*

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

सार – युग-पुरुष राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारत को आजाद कराने में ही योगदान नहीं दिया बल्कि उन्होंने एक दूरदर्शी शिक्षाविद् के रूप में कर्तव्य कर्म आधारित मूल्यवादी दृष्टिकोण से आच्छादित एक नवीन शिक्षा योजना की रूपरेखा भी प्रस्तुत किया। उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा-योजना को बेसिक शिक्षा योजना, वर्धा योजना, आधारभूत शिक्षा योजना आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इसके अलावा महात्मा गांधी ने शिक्षा के विविध उपांगों के संदर्भ में भी अपने विचार समय-समय पर व्यक्त किया है। गांधी जी के शिक्षा विषयक सभी विचारों को एकीकृत करते हुए शैक्षिक दर्शन सारगर्भित ढंग से प्रस्तुत है-

महात्मा गाँधी शिक्षा को एक व्यापक प्रक्रिया मानते थे। वस्तुतः शिक्षा वह है जो व्यक्ति में निहित सभी पक्षों को बहुमुखी करती है। उनका दृष्टिकोण था कि शरीर, मन, हृदय और आत्मा के योग से मानव आच्छादित होता है। इसलिए शिक्षा के द्वारा हाथ, मस्तिष्क और हृदय का विकास अवश्य किया जाना चाहिए। उन्होंने लिखा भी है- "शिक्षा से मेरा आशय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वोत्तम विकास से है।"

गाँधी जी शिक्षा को मात्रा साक्षरता एक सीमित नहीं मानते थे। उन्होंने लिखने-पढ़ने के साधारण ज्ञान (साक्षरता) को शिक्षा न मानकर व्यक्ति में निहित बहुमुखी शक्तियों के उन्नयन से सम्बन्धित करते हुए शिक्षा को व्यापक परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया। उन्हीं के शब्दों में "साक्षरता न शिक्षा का आदि है और न अन्त, यह तो ही और पुरुषों को शिक्षित करने का एक साधन मात्र है।"

अतः स्पष्ट है कि गाँधी जी शिक्षा को व्यापक रूप में ग्रहण करते हुए यह निरूपित किया कि मनुष्य की पूर्णता उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास से है अतः शिक्षा के द्वारा मानव व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने वाले अवयवों (शरीर, मन, हृदय और आत्मा) का संगतिपूर्ण विकास किया जाना चाहिए।

---------------------------------x---------------------------------

महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में आदर्शवादी और प्रयोजनवादी दो विचारधाराओं से अनुप्राणित था। आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुकूल गाँधी जी सर्वोच्च और अन्तिम उद्देश्य के रूप में आत्मबोध कराना शिक्षा का प्रधान उद्देश्य निरूपित किया। गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "टॉलस्टॉय फार्म के बच्चों को शिक्षा देने से पहले मैंने यह अनुभव किया कि आत्मा का प्रशिक्षण अपने आप में एक चीज है। आत्मा का विकास करना चरित्र निर्माण करना है और यह व्यक्ति को ईश्वरीय ज्ञान और आत्मबोध की और अग्रसर होने में सहायता पहुँचाता है।" वस्तुतः आत्माबोध के उद्देश्य में शिक्षा के अन्य सभी उद्देश्य सम्मिलित होते हैं। सभी उद्देश्यों को पूरा करने पर ही आत्मबोध के उद्देश्य की पूर्ति संभव है। आत्मबोध के उद्देश्य से मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सकता है। किन्तु पहले उसका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास कर दिया जाना चाहिए। गांधी जी के शब्दों में "मनुष्य का चरम लक्ष्य ईश्वर की अनुभूति पा लेना है, और मनुष्य की सारी क्रियाएँ वे चाहे सामाजिक हों, राजनीतिक हो या धार्मिक, सबको ईश्वर-दर्शन के अन्तिम उद्देश्य के द्वारा पथ-प्रदर्शन मिलना चाहिए।"

प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुकूल गाँधी जी शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य बनाने के भी पक्षधर थे। वस्तुतः तात्कालिक उद्देश्य के होते हैं जो किसी भी देश, काल, परिस्थिति में त्वरित महत्व रखते हैं। इन उद्देश्यों के अंतर्गत गांधी जी ने निम्नलिखित उद्देश्यों को स्थानापत्र किया है-

गाँधी जी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के चारित्रिक उन्नयन को आवश्यक मानते हैं। उनका कथन है कि "सच्ची शिक्षा साहित्यिक प्रशिक्षण में नहीं है, वरन् चरित्र निर्माण में है।" अतः चरित्र निर्माण के बिना शिक्षा व्यर्थ है। गाँधी जी ने कहा

है कि "मैं अनुभव करता हूँ कि हम व्यक्ति का चरित्र निर्माण करने में सफल हो जाते हैं तो समाज स्वयं ही सुधर जायेगा।" अतः शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करके व्यक्ति के स्वयं के विकास तथा समाज का सुधार की पृष्ठभूमि बनायी जानी चाहिए।

महात्मा गाँधी शिक्षा को इतना सक्षम बनाने के समर्थक थे कि उसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति में जीविकोपार्जन की क्षमता विद्यमान हो जाय। इसी कारण उन्होंने कहा भी है कि "शिक्षा को बेरोजगारी के प्रति एक प्रकार का बीमा होना चाहिए।" अतः शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में स्वावलम्बन कायिक श्रम के प्रति संचेतना, व्यावसायिक हुनर का विकास अवश्य किया जाना चाहिए।

गाँधी जी का मानना है कि संस्कृति आत्मा का गुण है, जो मानव व्यवहार के सभी क्षेत्रों को व्याप्त कर लेता है।" वास्तव में संस्कृति के दो रूप होते हैं। प्रथम बाह्य संस्कृति और द्वितीय आन्तरिक संस्कृति। बाह्य संस्कृति में समाज में व्याप्त बाहरी परिवेश आता है और आन्तरिक संस्कृति में व्यक्ति का व्यवहार और आचरण की शैली, नैतिकता आदि समाहित होता है। वास्तव में आन्तरिक संस्कृति आत्मा के गुणों से सम्पृक्त होती है। गांधी जी 22 अप्रैल, 1946 के अपने उपदेशात्मक भाषण में कस्तूरबा बालिकाश्रम नई दिल्ली में छात्राओं को उद्बोधित करते हुए कहा है कि "मैं शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष को साहित्यिक पक्ष की अपेक्षा अधिक महत्व देता हूँ। संस्कृति मूलाधार है जो विद्यालयों में तुम्हें प्राप्त होना चाहिए। इसके अंतर्गत व्यवहार और आचरण के तौर-तरीकों उठना, बैठना, चलना, वस्त्र पहनना आदि गुणों को देखकर कोई भी व्यक्ति एक निगाह से देखकर कह सके कि तुम इस संस्था की उपज हो। तुम्हारी बातचीत, दर्शकों और अतिथियों के प्रति तुम्हारे व्यवहार और अध्यापिकाओं और अपने से बड़ों के प्रति तुम्हारे व्यवहार में एवं परस्पर व्यवहार में तुम्हारी अन्तः संस्कृति प्रकट होनी चाहिए।" अतः शिक्षा का उद्देश्य सांस्कृतिक विकास करना होना चाहिए।

महात्मा गांधी की मान्यता थी कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का समन्वित एवं संगतिपूर्ण विकास किया जाना चाहिए। इसी कारण वह बालक के शरीर, मन और आत्मा का पूर्ण विकास करने पर जोर देते थे। गांधी जी वर्तमान शिक्षा में विद्यमान दोषों को जानते थे। वे वर्तमान शिक्षा में बौद्धिक शक्तियों के बिखराव तथा संवेगों के उचित प्रशिक्षण की क्रियाविधि के अभाव के साथ-साथ शारीरिक विकास की उचित व्यवस्था न होने से सुपरिचित थे। इसी कारण बालक के संगीतपूर्ण विकास के लिए मस्तिष्क और हृदय की शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक विकास के सम्यक विकास को यथेष्ठ मानते थे।

महात्मा गांधी शिक्षा में वैयक्तिक और सामाजिक दोनों उद्देश्यों के सम्यक विकास के साथ-साथ अद्भुत समन्वय की रूपरेखा प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निजी रूप से विकास अवश्य किया जाना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ व्यक्तिगत भिन्नताएँ विद्यमान होती हैं जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करती है। अतः सभी व्यक्तियों को एक ही लक्ष्य की और पशुओं के समान हाँकना बेकार है। यदि ध्यान से देखा जाय तो व्यक्तिगत बोध और समाज सेवा में कोई विरोध नहीं है। गाँधी जी ने वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों में सुन्दर समन्वय करते हुए लिखा है कि – "कोई भी राष्ट्र अपनी गतिशील इकाइयों के अभाव में प्रगति नहीं कर सकता है। इसके विपरीत कोई भी व्यक्ति प्रगतिशील राष्ट्र के अभाव में उन्नति नहीं कर सकता।"

महात्मा गाँधी ने पाठ्यचर्या को जीवनोपयोग बनाने पर अतिशय बल दिया है। उनका मानना था कि पाठ्यचर्या सैद्धान्तिक, पुस्तकीय तथा साहित्यिक नहीं होना चाहिए, अपितु पाठ्यचर्या जीवन-केन्द्रित तथा शिल्प-केन्द्रित होना चाहिए। गांधी जी ने अपनी शिक्षा की पाठ्यचर्या में निम्नलिखित विषयों को स्थान दिया है-

1. हस्त शिल्प-कताई-बुनाई, चमड़े का काम, कृषि, मिट्टी का काम, बागवानी, दफ्ती का कार्य, लकड़ी का काम आदि।
2. भाषा-मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, (प्रादेशिक भाषाएँ)।
3. गणित-अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, नाप-तौल।
4. सामाजिक विषय-इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, समाजशास्त्र एवं सामाजिक विषय का अध्ययन।
5. विज्ञान से सम्बन्धित विषय-भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, स्वास्थ्य विभाग, गृह विज्ञान।
6. कला-संगीत, ड्राइंग, पेंटिंग आदि।
7. शारीरिक शिक्षा-खेलकूद, व्यायाम, कुश्ती, ड्रिल आदि।

8. आचरण सम्बन्धी शिक्षा-नैतिक शिक्षा, समाज सेवा, प्रार्थना एवं अन्य क्रियाओं से सम्बन्धित ज्ञान एवं क्रियात्मक अभ्यास।

महात्मा गाँधी ने प्रचलित शिक्षण विधियों के विपरीत ऐसी नवीन शिक्षण विधियों को अपनाने पर बल दिया जो विद्यार्थियों को अत्यधिक क्रियाशील बनावें। विद्यार्थियों में ज्ञान की प्राप्ति के लिए ललक पैदा हो। वे स्वयं करके सीखें और प्रायोगिक कार्यों को करके अनुभव का विकास करे। गांधी जी बालाकों को हस्त-शिल्प पर आधारित शिक्षण की आयोजना बनाने के समर्थक थे। अपने हाथों से किसी कार्य को करने से बालकों में क्रिया और अनुभव दोनों का सम्यक रूप से विकास होता है। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण की सह-सम्बन्धीकरण विधि को अपनाया जाय। इस विधि द्वारा विविध विषयों की शिक्षा बालक को अलग-अलग न देकर समन्वित रूप से मिल सकेगी। ऐसी ही मान्यताओं को अपनाकर गांधी जी ने अपनी बेसिक शिक्षा योजना की रूपरेखा प्रस्तुत किया। संक्षेप में गांधी जी ने निम्नलिखित शिक्षण-विधियों को अपनाने पर बल दिया है-

महात्मा गांधी ने अपने हस्तशिल्प केन्द्रित पाठ्यचर्या में करके सीखने और अनुभव विकसित करने का सुझाव दिया है। उनका मानना है कि शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों को स्वयं नवीन रचना धर्मिता की और उन्मुख करे।

गांधी जी प्राचीन उपदेशकों की भाँति छोटे बच्चों को कहानी, नाटक, प्रश्न ेत्तर, प्रवचन विधि से शिक्षित करने पर बल देते थे। उनका मानना था कि किसी काम को करते हुए मौखिक विधि से दी गयी शिक्षा अत्यन्त कारगर होती है।

गांधी जी का मानना था कि छोटे बच्चों में अनुकरण करने की गहरी आदत होती है। वे अनुकरण द्वारा बहुत सीखते रहते हैं। अतः अनुकरण विधि को शिक्षण की एक प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

गाँधी जी का दृष्टिकोण था कि संगीत से जहाँ मन को आनन्द की अनुभूति होती है वहीं रूचि उत्पन्न करके बालक जिस कार्य अथवा क्रिया को कर रहे हैं उसकी और उनका ध्यान भी केन्द्रित किया जा सकता है इसलिए विविध हस्तशिल्पों, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देते समय संगीत विधि का आश्रय लिया जा सकता है।

गाँधी जी शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक और शिक्षार्थी में सहयोगी दृष्टिकोण रखने का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि शिक्षक और शिक्षार्थी में जितना अधिक सहयोगात्मक प्रवृत्ति होगी उतना ही अधिक वांछित अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति संभव होगी। विद्यार्थी प्रेम, स्नेह से शिक्षा प्रक्रिया में सहभागी बनेंगे और आत्म विश्वास से परिपूरित रहेंगे।

गाँधी जी शिल्प केन्द्रित पाठ्चर्या की शिक्षा देने के लिए समवाय अथवा सहसम्बन्ध विधि अपनाने पर बल दिया। इसमें हस्तशिल्प को केन्द्र मानकर उससे सम्बन्धित अन्य विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए। जैसे यदि बालक आलू की बुआई कर रहा है तो उसे विविध प्रकार के बीजों के विषय में, आलू के प्रकारों के विषय में आलू के लिए मिट्टी के सम्बन्ध में, रासायनिक खादों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक उपलब्धियों के विषय में, जलवायु के विषय में, भारत में आलू की खेती के फायदे, तदसम्बन्धी विविध साहित्यों का ज्ञान खेत का क्षेत्रफल, क्षेत्र के अनुसार बीज की मात्रा आदि बताया जाना चाहिए। इससे बालक एक कार्य करते हुए विविध प्रकार का ज्ञान समवाय विधि से प्राप्त कर लेगा।

महात्मा गांधी के कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। वे उसी बात को लोगों को अपनाने को कहते थे, जिसका अनुपालन उन्होंने स्वयं अपने जीवन में कर लिया था। वे स्वयं एक अनुशासित व्यक्ति थे। दमनात्मक अनुशासन के थे विरोधी और आत्मानुशासन के प्रबल समर्थक थे। आत्मानुशासन के लिए वे व्रत, उपवास, सत्याग्रह को अपनाने पर बल देते थे। यही कारण है कि उन्होंने बालकों को अपने-अपने कार्यों में इतना तल्लीन बनाने का समर्थन किया कि उन्हें उदण्डता करने अथवा अनुशासनहीनता फैलाने की फुरसत ही न मिले। दूसरी बात यह है कि गांधी जी विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों को अपने आचरण एवं व्यवहार में परिशुद्धता बनाये रखने पर बल देते थे। उनका स्पष्ट कथन है कि “यदि शिक्षक और शिक्षार्थी कोसों दूर बैठे हों तो भी शिक्षक द्वारा किये हुए कार्य का प्रभाव छात्र पर परोक्ष रूप से पड़ता ही है।” अतः गांधी जी आत्मानुशासन, मुक्तानुशासन तथा प्रभावात्मक अनुशासन के प्रबल हिमायती थे।

महात्मा गांधी शिक्षक को शैक्षिक प्रक्रिया का मूलाधार मानते थे। शिक्षक को सत्य का उपासक, अहिंसा, प्रेम, न्याय, कर्तव्य परायणता एवं नैतिक चारित्रिक गुणों को अपनाने वाला होना चाहिए। शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता तथा विविध प्रकार के हस्तशिल्प में पारंगत होना चाहिए। शिक्षक को स्थानीय समस्याओं का ज्ञान भी होना चाहिए। शिक्षक का सादा जीवन और विचारों में उच्चता के प्रति

निष्ठा होनी चाहिए। कथनी और करनी में समानता होनी चाहिए।

महात्मा गांधी शिक्षार्थी को विनयी, सदाचारी तथा ब्रह्मचारी बनने हेतु निर्देशित किया है। विद्यार्थियों के विविध कृत कार्यो से उसकी विशिष्टता एवं संस्कृति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता एवं अनुराग प्रतिबिम्बित होना चाहिए। गांधी जी विद्यार्थियों को शारीरिक बल, चारित्रिक बल, आत्मिक और बौद्धिक बल आदि गुणों से युक्त होने का मंतव्य दिया है। विद्यार्थियों को श्रमशील, क्षमाशील, स्वावलम्बी, तथा लोकसंग्रही प्रवृत्ति का होना चाहिए।

महात्मा गांधी का शिक्षा-संस्थाओं के सम्बन्ध में यह स्पष्ट अभिमत था कि उनको सामुदायिक जीवन का केन्द्र होना चाहिए जहाँ पर विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करने की व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा संस्थाओं में सुसज्जित प्रयोगशाला और हस्तशिल्प की शिक्षा काउचित प्रबन्ध होना चाहिए। विद्यालय में कच्चे माल को परिशोधित कराके विद्यार्थियों एवं विद्यालय के खर्च की पूर्ति की समुचित योजना बनायी जानी चाहिए।

बेसिक शिक्षा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का देश के लोगों के शैक्षिक अभ्युदय का अप्रतिम उपहार है। ब्रिटिश दासता से अभिशप्त भारतीय शिक्षा की दुर्दशा से मर्माहत होकर गाँधी जी ने शिक्षा की एक नवीन योजना 22 व 23 अक्टूबर, 1937 को वर्धा में आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में प्रस्तुत किया। गाँधी जी ने अपने उद्घाटन भाषण में अपनी बेसिक शिक्षा योजना की मुख्य विशेषताओं को विचार-विमर्श हेतु प्रेषित किया। डॉ. जाकिर हुसैन, प्रो.के.टी.शाह, आचार्य विनोवा भावे, काका कालेलकर, महादेव देसाई आदि विद्वानों ने इसमें प्रतिभाग किया। अन्ततः सर्वसम्मति से सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किये गये।

1. राष्ट्रीय स्तर पर सात वर्ष (7 से 14 वर्ष) तक देश के समस्त बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनाया जाय।

3. शिक्षा का आधार बालक के वातावरण से सम्बन्धित कोई उत्पादक हस्त शिल्प उदयोग हो जिससे समन्वित कर अन्य विषय पढ़ाये जाय।

4. शिक्षा की इस योजना द्वारा धीरे-धीरे शिक्षकों के वेतन का खर्च निकाला जाय।

सम्मेलन में उपरोक्त प्रस्तावों को ध्यान में रखकर एक व्यापक योजना एवं पाठ्यचर्या बनाने के निमित्त डॉ. जाकिर हुसैन (तत्कालीन कुलपति जामिया मिलिया, इस्लामिया विश्वविद्यालय, दिल्ली) के अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने 2 दिसम्बर, 1937 ई. तथा अप्रैल, 1938 ई. में क्रमशः अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किया। इस समिति द्वारा गांधी जी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा योजना को वर्धा शिक्षा योजना अथवा बुनियादी शिक्षा योजना के नाम से सम्बोधित किया गया। नि:द्देश्य एवं निरर्थक अंग्रेजी शिक्षा के स्थान पर सभी के कल्याण को दृष्टिगत रखकर गांधी द्वारा प्रस्तावित शिक्षा को नई तालीम भी कहा जाता है। इस योजना को हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में पारित किया गया। इस योजना में भारत की मूलभूत आवश्यकताओं, समय की तात्कालिक माँग को ध्यान में रखकर व्यापक रूपरेखा निहित थी इस कारण गांधी जी द्वारा प्रणीत शिक्षा योजना को अधिकांश लोगों को "बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा योजना" के सम्बोधन में अलंकृत किया गया। गांधी जी द्वारा प्रणीत बेसिक शिक्षा योजना को हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में पारित होने के बाद इसको क्रियान्वित करने के लिए अप्रैल, 1939 ईस्वी में सेवाग्राम में "हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का गठन किया गया। इस संघ ने बेसिक शिक्षा योजना के प्रचार-प्रसार तथा उन्न स्वरूप प्रदान करने में महनीय भूमिका का निर्वहन किया।

बेसिक शिक्षा योजना मूलतः पाँच सिद्धांतों से सम्पृक्त हैं-

बेसिक शिक्षा योजना का पहला मूलभूत तथ्य यह था कि राष्ट्र के सभी (7 से 14 वर्ष तक) बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिखा की व्यवस्था होनी चाहिए। वास्तव में भारत में जब बेसिक शिक्षा योजना बनायी जा रही थी, उस समय यहाँ गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा से भारतीय जन मानस अभिशिप्त था। इस कारण समाज के उच्च वर्ग एवं अन्य गिने चुने लोगों को ही शिक्षा नसीब हो पा रही थी। देश की विशाल आबादी को शिक्षा जैसी मूलभूत जरूरत की सम्पूर्ति के लिए बेसिक शिक्षा योजना में अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस सिद्धान्त से सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा सुगम हो सकी।

बेसिक शिक्षा का द्वितीय मूलभूत सिद्धान्त बच्चों को मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने से सम्बन्धित था। गांधी जी की अपनी मातृभाषा के प्रति गहरी निष्ठा थी। उनका विचार था कि अंग्रेजी भाषा अपनी कठिनता एवं दुरूहता के कारण भारतीय जनमानस में नहीं रच-बस सकती है। यह विदेशी संस्कृति की पोषक है। इसलिए शिक्षा का माध्यम

मातृभाषा ही होनी चाहिए। इससे तथ्यों के ज्ञान, समझ और प्रयोग में सरलता होती है।

बेसिक शिक्षा योजना में हस्त आधृत शिल्प को प्रमुखता दिया गया। जाकिर हुसैन ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि "वर्तमान शैक्षिक योजना व्यावहारिक रूप से लागू करने की स्वीकृति देती है कि बच्चों को किसी उत्पादक कार्य के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। यह विधि बहुमुखी रूप से समन्वित शिक्षा देने की समस्या से समाधान की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावकारी मानी गयी है।"

वर्धा सम्मेलन में यह प्रस्ताव बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में पारित किया गया कि शिक्षा किसी उत्पादक उदयोग पर आधारित होनी चाहिए। इस उदयोग का चयन बच्चों के स्थानीय परिवेश एवं परिस्थितियों को दृष्टि पथ में रखकर किया जाना चाहिए।" वास्तव में बेसिक शिक्षा का मूल मकसद यह था कि विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल किसी भी हस्तशिल्प पर आधारित कार्यों को करके किसी न किसी उदयोग से जुड़ जाय। इससे उनमें श्रम के प्रति निष्ठा, आत्म निर्भरता की भावना विकसित होगी। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आयेगा और राष्ट्रीय विकास को बल मिलेगा।

गांधी जी की मान्यता थी कि हस्त शिल्प पर आधारित बेसिक शिक्षा से बालकों में स्वावलम्बन एवं आत्म निर्भरता का विकास होगा। उनका कथन है कि "नयी तालीम की सफलता उसके स्वावलम्बी होने पर ही आँकी जा सकती हैं।" गांधी जी विद्यार्थियों को हस्त शिल्प एवं उदयोग केन्द्रित शिक्षा के माध्यम से अपने पैरों पर खड़े होने तथा विद्यालयों को अपना खर्च स्वयं उठाने अर्थात् आत्म निर्भर बनाने की दूर दृष्टि रखते थे। लेकिन उन्होंने शर्त यह रखी थी कि विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं को राज्य सरकार खरीदे और स्वयं उसको बेचे। गांधी जी के बेसिक शिक्षा के इस सिद्धान्त के कारण आचार्य नरेन्द्र देव जैसे विचारक ने उनकी कटु आलोचना किया और संभवतः इसी सिद्धान्त के कारण बेसिक शिक्षा ज्यादा ख्यातिवान नहीं बन पायी।

महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा योजना में विविध विषयों को आपस में जोड़कर अध्ययन एवं अध्यापन की एक नवीन पद्धति का सूत्रपात किया। इसे समवायी शिक्षा अथवा समन्वय का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के द्वारा किसी हस्तशिल्प को करते हुए विद्यार्थी उससे सम्बन्धित विधि विषयों तथा विज्ञान, गणित, भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

महात्मा गांधी ने बेसिक योजना में शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्यों को पूर्णता प्रदान किया-

1. बालकों को शारीरिक एवं मानसिक विकास करना।
2. बालकों का हस्तशिल्प के माध्यम से व्यवसायिक विकास करना।
3. बालकों को अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।
4. बालकों का नैतिक एवं चारित्रिक उन्नयन करना।
5. बालकों को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाना।
6. श्रम के प्रति जागरुकता का विकास करना।
7. उत्तम नागरिकता के गुणों का विकास करना।
8. हाथ, हृदय और आत्मा का संतुलित विकास करना।
9. स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता के गुणों का विकास करना।
10. सब के उदय (सर्वोदय) हेतु सामाजिक संरचना विनिर्मित करना।

बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

बेसिक शिक्षा योजना की पाठ्चर्या क्रिया प्रधान तथा ज्ञान, अनुभव, प्रयोग एवं खोज के सिद्धांतों पर आधारित है। इसका मूल मकसद बालकों को आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी बनाकर समाज का बहुविध उन्नयन करना है। बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को बुनियादी शिल्प, मातृभाषा, गणित, सामाजिक विषयों, सामान्य विज्ञान, संगीत कला, शारीरिक शिक्षा तथा आचरण सम्बन्धी क्रिया एवं विषयों के विविध प्रकरणों के साथ गुच्छित किया गया है। बेसिक शिक्षा में कक्षा पाँच तक सभी छात्र छात्राओं के लिए सह शिक्षा एवं समान पाठ्यक्रम अपनाने तथा कक्षा छः और सात में बालिकाओं के लिए बुनियादी शिल्प के स्थान पर गृह विज्ञान को पढ़ाने हेतु निर्देशित किया गया है।

बेसिक शिक्षा की समय-सारिणी		
स.क्र.	**विषय**	**निश्चित समय**
1.	बुनियादी शिल्प	3 घंटे 20 मिनट
2.	संगीत रेखा गणित गणित	40 मिनट
3.	मातृभाषा	40 मिनट
4.	सामाजिक विषय एवं सामान्य विज्ञान	30 मिनट
5.	शारीरिक शिक्षा	10 मिनट
6.	अवकाश	10 मिनट
	योग	5 घण्टे 30 मिनट

महात्मा गांधी द्वारा प्रणीत बेसिक शिक्षा योजना में निम्नलिखित गुण समाहित हैं-

1. जन शिक्षा की सर्वसुलभता हेतु अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।
2. बालक की रुचि, आवश्यकता, योग्यता पर आधारित व्यवस्था।
3. शिक्षा के द्वारा आत्म निर्भरता एवं स्वावलम्बन की भावना का विकास।
4. रुचिकर, नमनीय एवं गतिशील शिक्षा व्यवस्था।
5. हाथ, हृदय और आत्मा में अद्भुत समन्वय युक्त शिक्षा व्यवस्थां
6. शिल्प ज्ञान के माध्यम से विद्यार्थियों में श्रम के प्रति निष्ठा का विकास करना।
7. सभी लोगों को समान रूप से उपयोगी शिक्षा व्यवस्था।
8. मातृभाषा के माध्यम से ज्ञान की बारीकियों का बोध कराने वाली शिक्षा-व्यवस्था।
9. भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा और जीवन में तालमेल से गतिशील शिक्षा-व्यवस्थां
10. विविध विषयों से सहसम्बन्धित समवाय पद्धति पर आधारित शिक्षा-व्यवस्था।
11. परीक्षा के भय से मुक्ति देने वाली शिक्षा व्यवस्था।
12. पाठ्यसहगामी क्रियाओं से सम्पृक्त शिक्षा व्यवस्था।
13. बेसिक शिक्षा योजना विद्यालय, घर और समाज में सामंजस्य का विकास करती है।
14. बेसिक शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास को मूर्त रूपदेने में सक्षम है।
15. बेसिक शिक्षा केवल प्रशिक्षित शिक्षक ही दे सकते हैं।

बेसिक शिक्षा योजना में विद्यमान कतिपय कमियों अथवा दोषों के कारण यह व्यवस्था ज्यादा दिनों तक सफल नहीं हो पायी। इसकी प्रमुख कमियाँ निम्नवत् थीं-

1. बेसिक शिक्षा योजना मूलत; ग्रामीणों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। इसमें नगरीय जनों की जरूरतों को कोई महत्व नहीं दिया गया है।
2. बेसिक शिक्षा योजना गाँव व शहर के बीच खाई को चौड़ी करने वाली है। उच्च वर्ग के लोग इस योजना से संचालित विद्यालयों को हीन दृष्टि से देखते हैं।
3. बेसिक शिक्षा योजना में माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के विषय में बहुत कम ध्यान दिया गया है।
4. बेसिक शिक्षा योजना में निर्धारित समय-सारिणी में अन्य विविध विषयों को पर्याप्त समय नहीं दिया गया है। हस्तशिल्प को लगातार करने पर विद्यार्थियों में थकान की उत्पत्ति होती है जिससे वे अन्य विषयों को पूरे मनोयोग से नहीं पढ़ पाते हैं।
5. बेसिक शिक्षा उत्पादन पर इतना बल देती है कि विद्यालय मात्र एक कारखाना बनकर रह जायेगा और विद्यार्थी धन कमाने वाली मशीन।
6. बेसिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया गया है। जबकि नैतिक चारित्रिक एवं भारतीय संस्कृति के मूल्यों का विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।
7. बेसिक शिक्षा योजना आधुनिक वैज्ञानिक संयत्रों के युग में पूर्णतया अनुपयोगी है।
8. बेसिक शिक्षा योजना के अनुरूप शिक्षा देने वाले प्रशिक्षित अध्यापकों को तैयार करना बड़ा दुरूह कार्य है।

9. बेसिक शिक्षा योजना पूर्णतः अर्थ केन्द्रित है। यह भारतीय संस्कृति का ज्ञान विद्यार्थियों को देने में पूर्णतः अक्षम है।

10. बेसिक शिक्षा योजना विद्यार्थियों के सुकोमल मन को कुंठित तथा बाल-श्रम की और धकेलती है। यह अमनोवैज्ञानिक है।

11. बेसिक शिक्षा योजना में खेलकूद, व्यायाम मनोरंजन का कोई प्रबन्ध नहीं है जबकि शिक्षा का यह अभिन्न पहलू है।

12. बेसिक शिक्षा में आत्मनिर्भरता एवं शिल्प केन्द्रित मान्यता में जो तालमेल स्थापित किया गया है वह अव्यवहारिक है। प्रायः जिन चीजों को बच्चे बनायेंगे उनमें उतनी चमक एवं सफाई नहीं होगी। जितना कुशल कारीगरों द्वारा मिलती है। ऐसे में बच्चों द्वारा बनायी गयी चीजों से वांछित धन नहीं मिल पायेगा और आत्मनिर्भरता की संकल्पना अधूरी रह जायेगी।

13. बेसिक शिक्षा योजना में बनायी गयी चीजों, सामानों का दुरुपयोग होने से राष्ट्रीय कच्चे माल और धन की बर्बादी होगी।

14. बेसिक शिक्षा योजना में साल भर में 288 दिन की शिक्षण देने की व्यवस्था की गयी है। यह विद्यार्थियों के लिए बोझिल तथा उदासीनता को बढ़ाने वाला है। यह राष्ट्रीय प्रतिभा की उपेक्षा करता है।

उपर्युक्त कमियों के आधार पर कहा जा सकता है कि बेसिक शिक्षा योजना में मनोविज्ञान के सिद्धांतों की अवहेलना की गयी है। हस्त कार्य पर इतना अधिक बल दिया गया है कि बाल के व्यक्तित्व के अन्य पक्षों का विकास नहीं किया जा सकता है। किन्तु गांधी जी की बेसिक शिक्षा की योजना तत्कालीन भारतीय परिवेश के लिए उपयोगी थी जब देश आर्थिक दृष्टि से सबल नहीं था। तब ऐसी स्थिति में विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ अपना खर्चा स्वयं उठाकर आत्म निर्भर बनकर पढ़ाई करके घर, समाज में अच्छी स्थिति प्राप्त कर सकता था। अब देश आर्थिक दृष्टि से सबल है। सर्वत्र उन्नत मशीनें अच्छा कार्य कर रही हैं। ऐसे में बेसिक शिक्षा योजना में निहित किसी व्यवसाय एवं उदयोग की शिक्षा बालकों को देने के मंतव्य को ग्रहण किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण करने की संकल्पना को गांधी जी द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा योजना की कुछ मूलभूत विशेषताओं को आत्मसात कर पूरा किया जा सकता है।

अतः शिक्षा के संदर्भ में गाँधी जी की धारण है कि "शिक्षा वह है जो किसी की आत्मा को जगा दे, किसी के व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान कर दे, भीतर के बन्द फूल को खिला दे।" शिक्षा केवल सूचनाओं की संवाहिका नहीं है। अतीत में अर्जित सूचनाओं को मनुष्य के भीतर भरकर शिक्षा अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकती है। मनुष्य के भीतर के ज्ञान-बीज को अंकुरित पल्लवित, पुष्पित और फलित कर देना ही शिक्षा का असली मन्तव्य है। सृजन का अजस्त्र श्रोत जाग्रत आत्मा है। जाग्रत आत्मा के आलोक में नये-नये सृजन होते हैं। भीतर सारा ज्ञान-विज्ञान अनभिव्यक्त रूप में भरा पड़ा है जैसे बरगद के बीच में विशाल वट-वृक्ष सोया है। इसको जगाने के लिए मिट्टी, खाद और पानी की जरूरत है। इसी तरह गुरु और शैक्षिक परिस्थिति की मिलकर अन्तर्निहित ज्ञान-तंत्री को वीणा के तार की तरह झंकृत कर देते हैं और ज्ञान-जगत् में 'एकतान संगीत' छेड़ देते हैं। बस! यहीं से अभिनव सृजन की प्रक्रिया का आरम्भ हो जाता है। जब तक मनुष्य अपने भीतर के देवत्व को नहीं पहचान लेता तब तक शिक्षा का मन्तव्य अधूरा रहता है। उपनिषदों में इसे 'आत्मानं विद्धि' (अपने को जानो) कहा गया है।। सुकरात इसे Knowthyself कहता है। श्री अरविन्द ने "Life Divine" में इसको यों व्यक्त किया हैः "To fulfil god in life is man's manhood." अर्थात् अपने भीतर के देवत्व को परिपूर्ण करना ही मनुष्य की मनुष्यता है। राधाकृष्णन् का सारगर्भित विचार हैः "स्कूलो और कॉलेजों में हम जो कुछ भी पढ़ते हैं सब कुछ भुला देने के बाद जो बचता है वह भीतर का देवत्व है-सांस्कृतिक इन्सानियत है।" कहने का आशय केवल इतना है कि भीतर के देवत्व का वाह्य प्रकाशन ही शिक्षा का मूल प्रयोजन है।

'एड्यूकेशन' के निहितार्थ को समझाते हुए अंशों ने कहा हैः 'एड्यूकेशन' का अर्थ है "To draw out not to push in" अर्थात् भीतर प्रतिभा का जो बीच छिपा है, उसे बाहर निकालकर क्रियान्वित कर देना ही शिक्षा का मन्तव्य है। संग्रहीत सूचनाओं को भीतर डाल देना ही अभी तक शिक्षा का सम्पूर्ण प्रयोजन रहा है। ध्यान रहे कि सूचना और ज्ञान में अन्तर है। सूचना वह है जो बाहर से मिलती है और ज्ञान वह है जो भीतर से आता है। स्मृति का अच्छा होना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं है। स्मृति यांत्रिक है और बुद्धि सहज। स्मृति अतीत से सम्बनिधत है और बुद्धि भविष्य से। स्मृति का सम्बन्ध ज्ञात से है और बुद्धि का सम्बन्ध अज्ञात से। स्मृति पण्डित बना सकती है, ज्ञानी नहीं। चिन्तक तभी पैदा होता है

जब वह अन्जान में प्रवेश करता है। इस दृष्टि से शिक्षा का रिश्ता सूचनाओं के ढेर से न होकर भीतर की सृजनात्मक क्षमता से है।

प्रश्न है कि क्या शिक्षा के माध्यम से किसी नवीन तत्व का निर्माण सम्भव है? यदि हम यह मान लें कि शिक्षा के द्वारा किसी नवीन तत्व का निर्माण सम्भव है तो इससे सत्कार्यवाद खण्डित हो जायेगा। जो जहाँ नहीं है वह वहाँ से उत्पन्न नहीं हो सकताः "नाभाव विते सतः"। मक्खन दूध से निकलता है, क्योंकि वह उसमें पहले से ही अप्रकट रूप में विद्यमान है। जल के मथने से कभी भी मक्खन उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि वह वहाँ किसी भी रूप में विद्यमान नहीं है। इस दृष्टि से व्यक्ति की अन्तर्निहित सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया ही शिक्षण-प्रक्रिया है। इससे किसी नवीन तत्व का, जो पहले से अन्तर्निहित नहीं है, सृजन नहीं होता है। अतः "शिक्षा का सही उद्देश्य बच्चों की सम्भावनाओं का सम्पूर्ण विकास है।"[1] शिक्षा चाहे बाहर से मिलती हो या भीतर से, जो शिक्षा मनुष्यों या प्राकृतिक घटकों द्वारा मिलती है वह बाह्य शिक्षण है और निःसर्ग-शिक्षण आन्तरिक शिक्षण है। बाह्य शिक्षण व्यक्तित्व के मूल श्रोत का संस्पर्श नहीं कर सकता। इस दृष्टि से आन्तरिक या निःसर्ग शिक्षण ही वास्तविक शिक्षण कहा जा सकता है। हमें यह हमेशा स्मरण रखना चाहिए कि बाह्य शिक्षण केवल हमारे अन्तर्निहित तत्वों को ही विकसित करता है। बाह्य जगत से हम जो कुछ भी सीखते हैं, उसे प्रायः भूल जाते हैं। उनके केवल कुछ संस्कार ही बच जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि बाह्य शिक्षण से प्राप्त जानकारी की बातें आती हैं और चली जाती है। इससे यही सिद्ध होता है कि बाह्य शिक्षण केवल उन्हीं तत्वों को विकसित क सकता है, जो हमारे व्यक्तित्व में पहले से ही प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान है। केवल बाह्य शिक्षण से कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि वह तात्विक नहीं है।

अंग्रेज कवि एलेक्जेण्डर पोप ने कहा हैः "वृक्ष का अंकुर जिस तरफझुक जाता है, वृक्ष भी उसी और झुक जाता है। ठीक इसी प्रकार शिक्षा जिस प्रकार मानव-मन को मोड़ती है, मानव उधर ही मुड़ जाता है।" इस दृष्टि से शिक्षाशास्त्र वस्तुतः व्यक्तित्व निर्माण या मानव-निर्माण का विज्ञान है। शिक्षा का प्रयोजन सम्पूर्ण मानव का निर्माण करना है। सम्पूर्ण मानव की निर्मित का अर्थ है समग्र व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। अतः सच्ची शिक्षा समग्र शिक्षण को कहना चाहिए, जिससे मानव व्यक्तित्व में अन्तर्निहित आध्यात्मिक, बौद्धिक और भौतिक सभी गुणों का विकास हो सके। मानव व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं की उपेक्षा करके किसी एक पहलू पर ध्यान देना वस्तुतः शिक्षण-विधि के नियमों का खण्डन है। मानव मन के तीन पक्ष हैः ज्ञान, राग और संकल्प। ये तीन वृत्तियाँ परस्परापेक्षी है। इनका समतुल्य विकास ही व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास है। कोरा ज्ञान पाण्डित्य प्रदर्शन है, कोरा राग भावुकता या मूर्खता है और कोरा संकल्प या कर्म पाखण्ड है। ज्ञान के अनुकूल भाव और भाव के अनुकूल कर्म होना चाहिए। इसीलिए गाँधी जी इस बात पर विशेष बल देते हैं कि "रत्ती भर का आचरण कई मन ज्ञान से बड़ा होता है।" अर्थात् जो जाना जाय उसे जीवन में उतारा भी जाय। यदि ज्ञान आचरण में न उतरा तो वह मात्र भार है। जैसे गधे की पीठी पर चन्दन की लकड़ी का बोझ लदा हो तो उसे केवल भार की ही अनुभूति होती है, न कि सुगंध की। वैसे ही तथाकथित ज्ञानी ज्ञान का ही बोझ जीवनपर्यंत ढोता है। आचरण ही ज्ञान की सुगंध है। अतः सच्चा ज्ञानी वही है, जिसके जीवन में ज्ञान अच्छी तरह से आचरित हो।

शिक्षा को साक्षरता का पर्याय मान लेना भयंकर भूल है। साक्षरता केवल अक्षर-ज्ञान है। यह न तो शिक्षा का आदि है और न ही अन्त। यह बौद्धिक ज्ञान की प्राप्ति का एक साधन है। अक्षर-ज्ञान से बुद्धि में विवेक नहीं जग सकता। कबीर ने ठीक ही कहा है: "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ भया न पंडित कोय।" इस दृष्टि से भी हमारे भौतिक ज्ञान का आदर्श 'विवेक' है। अतः शिक्षा अक्षर-ज्ञान या शब्द के रूप में स्मृतियों का ढेर न होकर चरित्र-निमार्ण की प्रक्रिया है। प्रज्ञावान् के जीवन में ताजगी है-सुगन्ध है। वह पण्डित से नितातन्त मिन्न है। प्रज्ञावान अर्थ समझता है और तदनुसार आचरण करके सुन्दर बन जाता है। पण्डित सिर्फ शब्द मे उलझा रहता है और कुरूप हो जाता है। पाण्डित्य प्रदर्शन में वासना है-तनाव है-ईर्ष्या है-प्रतिस्पर्धा है-यश की विपासा है। विवेकी सदाचारी है और ज्ञान का अधिकारी है। इसीलिए गाँधी जी कहते हैं कि कर्म करके निरन्तर कुछ रहने की प्रक्रिया ही शिक्षण प्रक्रिया है।

जन्म को जीवन समझ लेना भूल है। जन्म जीवन नहीं है, अपितु जीवन जीने का एक अवसर है। जीवन को निर्मित करना होता है-उसका सृजन करना होता है। जीवन सिर्फ उन्हें मिलता है जो भीतर से जीवन से निखारते हैं। जन्म से मिला जीवन अनगढ़ पत्थर है। छेनी उठाकर मूर्तिकार बनना होगा। यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम राम की मूर्ति बनोगे या कृष्ण की अथवा बुद्ध की। तुम चाहो तो राम बन जाओं या रावण, कृष्ण की अथवा बुद्ध की। तुम चाहो तो राम बन जाओं या रावण, कृष्ण बन जाओं या कंस, बुद्ध बन जाओं या अंगुलिमाल। जैसे पैदा हुए वैसे मर गये तो दिब्य मूर्ति कहा बने? जन्म के साथ मिलने वाला जीवन कोरा कागज है। उस पर चाहे गाली लिखो या गीत; रामायण लिखो या गन्दा

www.ignited.in

उपन्यास; सुन्दर चित्र उकेरो या स्याही के धब्बों से गन्दा कर दो।

यदि तुम धन-पद प्रतिष्ठा को जिन्दगी समझ लेते हो तो भीड़ में खो जाते हो। यह नाममात्र की जिन्दगी दो कौड़ी की है, जहाँ कूड़ा-कचरा है। ऐसा इसलिए होता है कि तुम्हारी जन्मजात प्रतिभा पर जंग लग जाता है और तुम व्यर्थ की आपाधापी में उलझ जाते हो। प्रतिभा को शिक्षा की साधना से मांजना होगा तभी भीतर ज्ञान का प्रकाश जगमगायेगा और जीवन सही ढर्रे पर आ जायेगा। मनुष्य को क्षुद्र से राजी नहीं होना चाहिए। उसे तो निरन्तर कुछ नया होना है। अतः शिक्षण-प्रक्रिया निरन्तर कुछ बनते रहने की प्रक्रिया है। आज मनुष्य जो है वह अब उसे नहीं होना चाहिए। शास्त्र कहता है कि मनुष्य जो है उसके लिए उसे शर्मिन्दा होना चाहिए: "I am ashamed of what I am." आत्मछलावा से मनुष्य की गरिमा गिरती है। मनुष्य का अस्तित्व निरन्तर खुला है और कुछ बनने के लिए व्यग्र है। 'कुछ होने' के लिए नयी दुनिया का सृजन करना होता है। 'कुछ होने' की अपेक्षा 'कुछ न होने' की रूप में सत्ता अधिक परिभाषित है। निरन्तर बेहतर दुनिया की तलाश में 'न' 'हाँ' की मदद करता है। कुछ नया होने में ही शिक्षा का अर्थ है । विष के रूप में प्रस्तुत करना कुछ भी नया नहीं है। विष का रासायनिक परिवर्तन करके जीवनदायिनी औषधि का रूप देना सृजन है।यह सृजन वैद्य और रोगी दोनों को आनन्द देता है। इस दृष्टि से शिक्षा ज्ञान के अभिनव सृजन की सकारात्मक प्रक्रिया है, जो शिक्षक शिक्षार्थी दोनों को आनन्दित करती है।शिक्षण आनन्द है, धन्धा नहीं। जब शिक्षक शिक्षा के रस में डूबता है तो विद्यार्थी को भरपूर आनन्द मिलता है। सूचनाओं का संग्रह शिक्षा नहीं है। शिक्षा वह कला है, जो ज्ञान के नये-नये आयामों को खोलती रहती है।"शिक्षण सूचनाओं को शिक्षार्थी के भीतर डालना नहीं है, अपितु भीतर से उसकी सर्जनात्मक चेतना को जगा देना है। यदि शिक्षक ऐसा कर सके तभी वह गुरू की प्रतिष्ठा पा सकता है।" व्यक्तिगत अस्तित्व को सर्वगत अस्तित्व से जोड़ देना, व्यष्टि, में समष्टि या अणु में विराट भर देना गुरूमंत्र का चमत्कार है और शिक्षा का मन्तब्य भी।

'हमे मरे हुए उत्तर नहीं चाहिए, जीवन्त प्रश्न चाहिए

गांधी शिक्षा-दर्शन का यही राज है। सत्तात्मक बेचैनी ही शिक्षा-दर्शन की सार्थकता है। मानव-जीवन शिक्षा का एक सतत अभियान है, जिसके सम्मुख आत्म-प्रकाशन की चिन्ता है। चिन्ताएँ अपनी निजता हैं। उनको झुठलाना है। मनुष्य भी पशु की तरह नग्न पैदा होता है बिना वाणी के। अन्तर इतना है कि पशु जैसे पैदा होता है वैसे बिना कुछ बने मर जाता है और मनुष्य धीरे-धीरे शिक्षा के माध्यम से अपने को संस्कारिता करते हुए बहुत आगे निकल जाता है। दुर्भाग्य है कि आज शिक्षण संस्थाएँ कारखाना बन गयी हैं, जहाँ शिक्षकों द्वारा आदमी को ढालने का प्रयास जारी है। फर्क इतना है कि कारखानों में चीजें ढलती हैं और विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में आदमी ढलते हैं। शिक्षक नौकर हो गया है-व्यवसायी बन गया है। इस सच्चाई का अनुभव शिक्षक भी करता है। परन्तु वह जानकर भी अनजान बन गया है। इस आत्मप्रवंचन से उसे बचना होगा, तभी शिक्षा का कल्याण होगा। प्रकृति को अपना आदर्श शिक्षक मानना होगा। बच्चा धीरे-धीरे पराधीनता से स्वाधीनता और निःशब्दता से संगीत की और बढ़ता है। शिक्षक का काम केवल इतना है कि वह विकास की प्रक्रिया में थोड़ी मदद करे-उसमें अभिरूची पैदा करे ताकि शिक्षार्थी जीवन-संग्राम में अपनी क्षमताओं एवं सम्भावनाओं का विकास कर सके। प्रकृति हमें निरन्तर जीवन का आदर्श पाठ पढ़ा रही है। इसीलिए तो वर्ड्सवर्थ को वृक्षों, झरनों और पाषाण-खण्डों में भी जीवन के दिव्य सन्देश मिलते हैं। प्रकृति के सभी घटक हमें कुछ-न-कुछ सिखाते रहते हैं। पक्षियों ने आकाश में उड़ना सिखाया, मछलियों ने तैरना सिखाया, कोकिल ने संगीत सिखाया और मयूर के रंग-बिरंगे पंखो ने शान-शौकत का मार्ग दिखाया। इस दृष्टि से विराट प्रकृति एक दिव्य संदेश मिलते हैं। प्रकृति हमारा अन्तर्निहित तत्त्व है कि अपने आप शिक्षा से आत्मविकास सम्भव है।

यदि शिक्षण मानव की अन्तर्निहित सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति है तो हमें सर्वप्रथम मानव की प्रकृति को समझना होगा। मनुष्य को स्वभाव से दुष्ट मान लेना सम्पूर्ण मानव-जाति का अपमान है। ऐसी धारणा से निराशावाद को प्रश्रय मिलता है और जीवन बोझ बनकर रह जाता है। साथ ही शिक्षण-प्रशिक्षण के सभी उपकरण व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। जीवन जीने में मजा तभी आता है जब यह धारणा बलवती हो जाय कि दानव पर मानव की विजय सुनिश्चित है स्वामी विवेकानन्द की मान्यता हैः "मनुष्य को प्रकृतितः पापी कहना ही पाप है और मानव-समाज पर एक लांछन भी।" मानव-स्वभाव नित्य परिवर्तनीय है। दुर्गणों से सदगुणों की और बढ़ते जाना ही 'मनुष्यत्व' है। 'मानव-सेवा ही माधव-सेवा है'-यही वेदान्त की अभिनव मीमांसा है। विकासक्रम में मनुष्य ने गहराई से अनुभव किया कि 'दूसरों को खाकर जीयो' से अच्छा सिद्धान्त जीयो और जीने दो' का सिद्धान्त है और उससे भी सुन्दर सिद्धान्त है 'दूसरों के लिए जीयों।'

यदि मानव की प्रकृति में 'साधुता' न मानी जाय तो फिर उससे 'साधुता' कभी भी प्रकट नहीं हो सकती। एतदर्थ विधान

है कि वन्ध्या को पुत्र नहीं हो सकता और न ही शश को शृंग हो सकता है। अतः स्पष्ट है कि मानव की प्रवृत्ति में साधुता गर्भित है। इस विश्वास पर ही शिक्षा की यह कल्पना टिकी है कि वह मानव की सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति है। बीज रूप में सारे सद्गुण मनुष्य के भीतर जन्म से ही मौजूद हैं। यदि मानव-प्रकृति में साधुता नहीं रहती तो शिक्षा के माध्यम से नैतिक गुण प्रकट न होतें। पुनः शिक्षाशास्त्र स्वयं चरित्र-निर्माण का शास्त्र है। जैसे रेखाओं या बिन्दुओं का सुन्दर विन्यास चित्रकला है, स्वरों की सुव्यवस्था संगीत कला है और संकेतों का सुव्यवस्थापन नृत्यकला है वैसे ही भावों का सुन्दर अभियोजन या उदात्तन आचरण कला है। सदाचरण को विकसित करके चरित्र की निर्मित करना ही नैतिक शिक्षा का मूल प्रयोजन है।

नैतिक शिक्षा मनुष्य के चरित्र का निर्माण वैसे ही करती है जैसे माली उपवन को सजाता है और शिल्पी पत्थर को काट-छांटकर उसे भव्य प्रतिमा में परिवर्तित कर देता है। यदि हम मानव-स्वभाव की साधुता में अविश्वास करें तो फिर उसके संस्कार-परिष्कार की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार मानव की पराजय स्वयं शिक्षा की पराजय हो जायेगी। मानव-स्वभाव को अपरिवर्तनीय मान लेना अनैतिक तो है ही, अमनोवैज्ञानिक भी है। हृदय-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन, आचार-परिवर्तन और धर्म-परिवर्तन आदि घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि मानव स्वभाव से अच्छा है। गाँधी जी की धारणा है: "आज शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता और सदाचार पर इतना बल दिया जा रहा है, क्योंकि चरित्र ही मानवता की सर्वोत्तम पूँजी हैं।" यदि हमारी नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियां अविकसित रह जायें तो मनुष्य एक विजातीय पशु बनकर रह जाय। नीति या धर्म वह विभेदक तत्त्व है, जो मनुष्य को पशु से पृथक करता है। हर्बर्ट इसीलिए "शिक्षा का एकमात्र प्रयोजन नैतिकता का विकास मानते हैं।"

भारत के प्राचीन ऋषियों की भी यही धारणा है कि यदि विद्या विवाद के लिए है धन उन्माद के लिए है और शक्ति परपीड़न के लिए है तो व्यर्थ है: "विद्या विवादाय धनं शक्तिः परेषां परपीडनाय।" सदाचार के बिन कोरा शब्दज्ञान शिक्षा के उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता। अपने आप में साक्षरता मनुष्य के चरित्र-निमार्ण में सहायक नहीं है। साहस के बिना ज्ञान उस मोम की मूर्ति की तरह है जो देखने में सुन्दर है, किन्तु जरा-सी गर्मी पाने से पिघल जाता है। गाँधी की दृष्टि में "मानवता के आधार पर मूल्यों के अभाव में शिक्षा भयावह है।" मानव-जीवन की सार्थकता इसी में है कि उसकी शिक्षा का अधिष्ठान नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन की एक दीक्षा है और हमारा द्वितीय जन्म है।

गाँधी के सर्वोदयी मानववाद का प्रयोजन उस नये मानव का सृजन है, जिसमें बुराई और हिंसा की प्रवृत्ति तक न हो। शिक्षा-दर्शन यह बताता है कि मानव-जाति का इतिहास नैतिक गुणों के क्रमिक विकास की कहानी है। विकासवाद भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है कि मानव समाज में उत्तरोत्तर हिंसा का ह्नास और अंहिसा का विकास हुआ है। समाज बर्बरता एवं हिंसा से प्रेम एवं अहिंसा की और गतिमान रहा है। अस्त्र-शस्त्र से निःशस्त्रीकरण की और बढ़ते चरण एतदर्थ साक्ष्य हैं। यह भ्रान्त धारणा है कि संघर्ष ही जीवन है एवं प्रगति की पहेली भी। संघर्ष से संघर्ष बढ़ेगा, हिंसा से हिंसा बढ़ेगी और प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धा में ही वृद्धि होगी। यह प्रकृति का विधान है। संघर्ष को जीवन मान लेने से मनुष्य बाघी समाज की और प्रतीपगमन कर जायेगा।साथ ही विरोधवाद, संघर्षवाद और संहारवाद को बढ़ावा मिलेगा। शिक्षा इस घातक सोच को बदलने की सर्वोत्तम प्रक्रिया हैं। शिक्षा-दर्शन ही हमें यह बताता है कि संघर्ष सहकार की दिशा में प्रगति करते रहना ही 'संस्कृति' है। 'कलह-वृत्ति' के आगे 'मिलन -वृत्ति' ही मानव-समाज में सदैव पशु-बल के स्थान पर नीतिबल या धर्मबल का वर्चस्व रहा है। माँ की ममता, पिता का प्यार और पड़ोसी का सहयोग इसकें लिए प्रमाण है। विकास क्रम में वही टिक पाते हैं जो परस्पर सहयोग के महत्व को मानकर चलते हैं।सह-अस्तित्व तो प्रकृति का नियम हैं डार्विन के अनुयायियों को अपनी धारणा बदलकर यह विधान स्वीकार ही करना होगा कि 'सहकार की कला में निष्णात् व्यक्ति ही योग्यतम है।' मनुष्य की योग्यता उसकी पशुता में न होकर उसकी आध्यात्मिक शक्ति और हृदयवत्ता में है। इसीलिए गाँधी जी कहते हैं कि व्यष्टि का कल्याण समष्टि के कल्याण में है। सब के उदय में ही अपना अभ्युदय है।" जब तक हम अपने अस्तित्व को 'सम्पूर्ण अस्तित्व' के साथ नहीं जोड़ेगे तब तक न तो विश्वमानवता' का कल्याण होगा और न ही शिक्षा-दर्शन का मिशन पूरा होगा।

सहायक सन्दर्भ सूची

युग पुरुष गाँधी – प. कमला पति त्रिपाठी

गाँधीवाद की रूपरेखा – रामनाथ सुमन

गाँधी बनाम साम्यवाद सदानंद भारतीय

सामाजिक विचारों का इतिहास – डॉ. हरी ओम त्रिपाठी

सामाजिक विचारों का इतिहास – शर्मा एवं गुप्ता

सामाजिक विचारधारा – रवीन्द्रनाथ मुखर्जी

उच्चतर समाजशास्त्री सिद्धान्त – रवीन्द्रनाथ मुखर्जी

भारतीय सामाजिक चिंतन – मुखर्जी व अग्रवाल

भारतीय सामाजिक चिंतन – बी.एन. सिंह

समाजशास्त्र – प्रो. एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा

Corresponding Author

Dr. Anju Srivastava*

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

dr.anju.shri@gmail.com